IJNRD.ORG ISSN : 2456-4184
INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD) | IJNRD.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

प्रेमचंद के साहित्य में ग्राम्य जीवन, निर्धनता और कृषक संकट का यथार्थवादी अध्ययन

सोनम सिंह [1], डॉ. जयसिंह यादव [2]

[1] पी-एच.डी. शोध छात्रा, हिंदी विभाग, पी.के. विश्वविद्यालय, करैरा, शिवपुरी (म.प्र.)
[2] शोध निर्देशक, हिंदी विभाग, पी.के. विश्वविद्यालय, करैरा, शिवपुरी (म.प्र.)

सारांश

प्रेमचंद का साहित्य हिंदी कथा-परंपरा में यथार्थवाद का सबसे सशक्त उदाहरण है, जिसमें उन्होंने ग्रामीण जीवन, निर्धनता और कृषक संकट का गहन और मार्मिक चित्रण किया है। उनके लेखन का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि समाज-सुधार और मानवता की सेवा था। उनकी कहानियाँ और उपन्यास जैसे गोदान, निर्मला, पूस की रात और कफन भारतीय ग्रामीण समाज की जटिलताओं, विषमताओं और संघर्षों को सामने रखते हैं। प्रेमचंद ने ग्राम्य जीवन को न तो आदर्शवादी दृष्टि से देखा और न ही केवल आलोचना की दृष्टि से, बल्कि उसे जीवन की संपूर्णता में प्रस्तुत किया। गाँव की चौपाल, खेत-खलिहान, धार्मिक अनुष्ठान और सामुदायिक परंपराएँ उनकी रचनाओं में जीवंत होती हैं, वहीं गरीबी, अंधविश्वास, जातिगत विभाजन और शोषण भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। निर्धनता का यथार्थ उन्होंने इस रूप में चित्रित किया कि वह व्यक्ति की गरिमा, आत्मसम्मान और मानवीय मूल्य को तोड़ डालती है, जबकि कृषक जीवन की समस्याओं में बेगारी, कर्ज और शोषण को केंद्र में रखा। गोदान का होरी इस त्रासदी का सबसे बड़ा प्रतीक है, जो जीवनभर मेहनत के बावजूद कर्ज और करों की चक्की में पिसता रहता है। स्त्रियों के संघर्ष, त्याग और सहनशीलता को भी प्रेमचंद ने उतनी ही गहराई से उभारा है, जहाँ धनिया, झुनिया और निर्मला जैसी स्त्रियाँ परिवार और समाज की नैतिक शक्ति बनकर सामने आती हैं। उनकी भाषा और शैली सहज, सरल और प्रभावी है, जिसमें कृत्रिमता नहीं बल्कि लोकजीवन की सच्चाई और पात्रों की संवेदना प्रतिध्वनित होती है। इस प्रकार, प्रेमचंद का साहित्य केवल कथा नहीं, बल्कि भारतीय समाज का दस्तावेज है, जो ग्राम्य जीवन की वास्तविकता, निर्धनता की त्रासदी और कृषक संकट की गाथा को उजागर करते हुए परिवर्तन की चेतना जगाता है।

मुख्य शब्द: यथार्थवाद, ग्राम्य जीवन, निर्धनता, कृषक संकट और स्त्री संघर्ष

1. प्रेमचंद और यथार्थवाद की पृष्ठभूमि

प्रेमचंद (1880–1936) हिंदी साहित्य के ऐसे महान कथाकार हैं जिन्होंने भारतीय समाज के यथार्थ को अपने साहित्य का केंद्र बनाया। उनका लेखन उस दौर में उभरकर सामने आया जब भारतीय समाज औपनिवेशिक दमन, जमींदारी अत्याचार, निर्धनता और सामाजिक विसंगतियों से जूझ रहा था। प्रेमचंद ने साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन न मानकर उसे समाज-सुधार और जन-जागरण का उपकरण माना। उनकी कहानियाँ और उपन्यास ग्राम्य जीवन की सजीव झलक प्रस्तुत करते हैं, जहाँ किसान, मजदूर, स्त्रियाँ और निम्नवर्गीय पात्र अपनी समस्त पीड़ा, संघर्ष और जिजीविषा के साथ सामने आते हैं। इस प्रकार उनके साहित्य में यथार्थवाद केवल वर्णन नहीं, बल्कि परिवर्तन की चेतना भी है (राय एवं त्रिवेदी, 1982) ।

उनका यथार्थवाद पश्चिमी साहित्य के 'रियलिज़्म' से प्रेरित होने के साथ-साथ भारतीय परिस्थितियों की गहराई से जुड़ा हुआ है। टॉल्स्टॉय और गोर्की जैसे रूसी लेखकों के प्रभाव के बावजूद प्रेमचंद ने भारतीय ग्रामीण जीवन की विशिष्टताओं को अभिव्यक्त किया। वे न केवल किसानों की आर्थिक दुरवस्था को रेखांकित करते हैं, बल्कि उनके भीतर छिपी सांस्कृतिक चेतना और नैतिक मूल्यों को भी सामने रखते हैं। यही कारण है कि उनके साहित्य को "कथानायक नहीं, समाज नायक है" की संज्ञा दी जाती है (जयलक्ष्मी, 2016)। प्रेमचंद की दृष्टि ने साहित्य को सामंती और औपनिवेशिक जकड़नों से मुक्त कर सामाजिक यथार्थवाद की दिशा दी (सिंह, 2020)। इस संदर्भ में उनका साहित्य आधुनिक हिंदी कथा परंपरा का आधारस्तंभ है, जिसने साहित्य को समाज की गहरी समस्याओं से जोड़ा।

2. प्रेमचंद का साहित्यिक उद्देश्य: समाज-सुधार और मानवीय करुणा

प्रेमचंद का साहित्यिक उद्देश्य केवल कथा-कहानी गढ़ना या मनोरंजन कराना नहीं था, बल्कि वे साहित्य को समाज के दर्पण और परिवर्तन का माध्यम मानते थे। उनके अनुसार साहित्यकार का कार्य केवल सौंदर्य का चित्रण करना नहीं है, बल्कि समाज में व्याप्त असमानताओं, अन्याय और शोषण को उजागर करना भी है। उन्होंने किसानों, मजदूरों, स्त्रियों और निम्नवर्गीय पात्रों को अपने साहित्य का नायक बनाकर समाज के उस तबके को आवाज़ दी, जिसे अक्सर उपेक्षित किया जाता था। इसीलिए वे कहते थे कि साहित्य समाज का मार्गदर्शक होता है और उसका उद्देश्य मानवता की सेवा करना है। प्रेमचंद का मानना था कि साहित्यकार को जनता के दुःख-दर्द को समझना चाहिए और उन्हें कलम के माध्यम से समाज के सामने लाना चाहिए (अंसारी एवं नागपाल, 2023)।

उनके साहित्य में मानवीय करुणा की गहरी धारा प्रवाहित होती है। चाहे 'पूस की रात' का हलकू हो, 'कफन' का घीसू-माधव या 'गोदान' का होरी — ये पात्र अपने संघर्ष और पीड़ा के माध्यम से ग्रामीण जीवन के यथार्थ को सामने रखते हैं। इन पात्रों की त्रासदी केवल व्यक्तिगत नहीं बल्कि सामूहिक है, जो उस समय के भारतीय समाज की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का प्रतिबिंब है। प्रेमचंद करुणा को दया या सहानुभूति तक सीमित नहीं रखते, बल्कि उसे सामाजिक न्याय और संवेदना से जोड़ते हैं। उनका उद्देश्य पाठक को केवल दुःख का अनुभव कराना नहीं है, बल्कि उसे सामाजिक अन्याय और शोषण के खिलाफ सजग बनाना भी है (दावर, 1996)। इसीलिए प्रेमचंद की रचनाओं में करुणा और यथार्थ का गहरा सम्मिलन दिखाई देता है।

प्रेमचंद का समाज-सुधारवादी दृष्टिकोण केवल बाहरी संरचनाओं तक सीमित नहीं था, बल्कि वह मानवीय मूल्यों की स्थापना पर आधारित था। वे सामाजिक समानता, स्त्री-स्वतंत्रता, किसान-मजदूरों के अधिकार और मानवीय गरिमा को साहित्य का केंद्रीय मूल्य मानते थे। उनके उपन्यासों और कहानियों में शोषित वर्ग की मुक्ति की आकांक्षा बार-बार सामने आती है। उदाहरण के लिए, 'निर्मला' में स्त्री की विडंबना और पितृसत्तात्मक समाज की कठोरता का यथार्थवादी चित्रण है, तो 'गोदान' में कृषक जीवन का शोषण और करुणा का चरम रूप दिखाई देता है। इस प्रकार उनका साहित्य सामाजिक चेतना को जाग्रत करने वाला है, जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उनके समय में था ((श्रीवास्तव एवं प्रेमचंद, 1936))। उनकी रचनाएँ यह संदेश देती हैं कि साहित्यकार का कर्तव्य केवल सौंदर्य-चिंतन नहीं, बल्कि समाज को बेहतर बनाने की जिम्मेदारी उठाना भी है।

3. ग्राम्य जीवन का चित्रण : सांस्कृतिक मूल्य और सामाजिक संरचना

प्रेमचंद का साहित्य भारतीय ग्राम्य जीवन का सबसे सजीव और यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत करता है। वे स्वयं ग्रामीण परिवेश में पले-बढ़े थे, इसलिए गाँव की बारीकियों, लोगों के संबंधों और उनके संघर्षों को उन्होंने न केवल देखा बल्कि गहराई से अनुभव भी किया। उनकी कहानियों और उपन्यासों में गाँव केवल एक पृष्ठभूमि नहीं है, बल्कि वह एक जीवित सामाजिक इकाई है जहाँ विभिन्न वर्ग, जातियाँ और मानवीय संवेदनाएँ परस्पर गुंथी हुई दिखाई देती हैं। प्रेमचंद ने ग्राम्य जीवन को किसी रोमांटिक या आदर्शवादी दृष्टि से नहीं देखा, बल्कि उसमें मौजूद यथार्थ—गरीबी, अंधविश्वास, जातिगत विभाजन, शोषण और संघर्ष—को सामने रखा। साथ ही उन्होंने यह भी दर्शाया कि गाँव केवल विषमता और पीड़ा का स्थल नहीं है, बल्कि वहाँ नैतिक मूल्यों, आपसी सहयोग और परंपरागत सांस्कृतिक चेतना की भी गहरी जड़ें हैं (प्रेमचंद, 2024)। इस प्रकार उनके साहित्य में ग्राम्य जीवन का चित्रण न तो अति-आलोचनात्मक है और न ही अति-आदर्शवादी, बल्कि वह वास्तविकता और जीवन्तता से भरा हुआ है।

ग्राम्य जीवन के चित्रण में प्रेमचंद ने विशेष रूप से सांस्कृतिक मूल्यों और सामाजिक संरचना पर प्रकाश डाला है। गाँव में सामुदायिक जीवन की परंपरा, धार्मिक अनुष्ठान, मेलों-त्योहारों की धूम और आपसी सहयोग की भावना स्पष्ट दिखाई देती है। 'गोदान' में होरी का चरित्र केवल एक किसान का प्रतीक नहीं है, बल्कि वह ग्रामीण समाज की जिजीविषा, धार्मिक आस्था और नैतिक मूल्यों का प्रतिनिधि है। गाँव की चौपाल, खेत-खलिहान, पनघट और मेले-ठेले उनके साहित्य में जीवंत हो उठते हैं। यह सब मिलकर ग्रामीण संस्कृति की उस आत्मा को व्यक्त करते हैं जिसमें परंपरा और सामूहिकता की भावना गहराई से निहित है। लेकिन इन सांस्कृतिक मूल्यों के साथ-साथ प्रेमचंद ने ग्रामीण समाज की संरचना में मौजूद विसंगतियों—जैसे जातिगत ऊँच-नीच, स्त्री की उपेक्षा और कृषक शोषण—को भी उजागर किया है। वे दिखाते हैं कि कैसे सामंती और पितृसत्तात्मक ढाँचा ग्रामीण समाज को भीतर से कमजोर करता है और कैसे सामुदायिकता के बावजूद वर्गीय अंतर और संघर्ष वहाँ गहराई से मौजूद रहते हैं (चन्द्रा, 1982)।

सामाजिक संरचना के संदर्भ में प्रेमचंद ने विशेष रूप से किसानों और मजदूरों की स्थिति, जमींदारी-साहूकारी शोषण और ग्रामीण स्त्रियों की दयनीय दशा का यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किया है। 'पूस की रात' में हलकू की ठिठुरती जिंदगी केवल एक किसान की व्यक्तिगत त्रासदी नहीं है, बल्कि यह उस वर्ग की सामूहिक पीड़ा है जो अपनी मेहनत के बावजूद निर्धनता और अभाव से ग्रस्त है। इसी तरह 'कफन' में घीसू और माधव के माध्यम से उन्होंने गरीबी की चरम सीमा और मानवीय मूल्यों के विघटन का मार्मिक चित्रण किया है। स्त्रियों की स्थिति को भी उन्होंने बड़ी सूक्ष्मता से उजागर किया है—'निर्मला' जैसी कृतियाँ यह दर्शाती हैं कि कैसे ग्रामीण समाज में स्त्रियाँ पितृसत्तात्मक संरचना, आर्थिक मजबूरियों और सामाजिक मान्यताओं के बीच पिसती रहती हैं। ग्राम्य जीवन के इन बहुआयामी चित्रों के माध्यम से प्रेमचंद केवल ग्रामीण समाज का प्रतिबिंब ही प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि वे उसकी समस्याओं और संभावनाओं दोनों की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट करते हैं (कर्ण एवं हैदर)। इसीलिए कहा जाता है कि प्रेमचंद के साहित्य में गाँव किसी स्थिर पृष्ठभूमि की तरह नहीं, बल्कि एक जीवंत चरित्र की भाँति उपस्थित है, जो अपने भीतर संघर्ष, करुणा, संस्कृति और सामाजिक चेतना की समग्रता समेटे हुए है।

4. निर्धनता का यथार्थ: अभावग्रस्त जीवन की त्रासदी

प्रेमचंद के साहित्य में निर्धनता केवल आर्थिक संकट का दर्पण नहीं है, बल्कि यह मानवीय जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी के रूप में चित्रित होती है। उनकी कहानियों में निर्धन पात्र हमें यह दिखाते हैं कि गरीबी मनुष्य से केवल उसके भौतिक साधन ही नहीं छीनती, बल्कि उसकी गरिमा और आत्मसम्मान को भी तोड़ देती है। उदाहरण के लिए, 'पूस की रात' का हलकू ठंड से काँपते हुए भी खेत की रखवाली करने को विवश है। इस पात्र के माध्यम से प्रेमचंद यह संदेश देते हैं कि गरीबी मनुष्य के श्रम का मूल्य शून्य कर देती है और उसकी बुनियादी आवश्यकताओं तक को पूरा नहीं होने देती। इसी बात को आलोचक कर्ण एवं हैदर ने भी रेखांकित किया है कि प्रेमचंद की कहानियों में निर्धनता केवल भूख और अभाव का वर्णन नहीं है, बल्कि यह ग्रामीण जीवन की जटिलताओं का प्रतीक है (कर्ण एवं हैदर)। इसी प्रकार 'कफन' में घीसू और माधव जैसे पात्र निर्धनता के चरम रूप को प्रस्तुत करते हैं, जहाँ भूख और अभाव के कारण व्यक्ति मानवीय नैतिकताओं और जिम्मेदारियों से भी समझौता कर लेता है। इस पर विचार करते हुए शर्मा (2004) का मत है कि 'कफन' में गरीबी मानवीय मूल्य-विघटन की पराकाष्ठा का चित्रण करती है (शर्मा, 2004)।

प्रेमचंद निर्धनता को व्यक्तिगत विफलता नहीं मानते, बल्कि इसे सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं—जमींदारी, साहूकारी और औपनिवेशिक नीतियों—का परिणाम बताते हैं। 'गोदान' का होरी इस त्रासदी का सबसे सशक्त उदाहरण है, जो अपनी ईमानदारी और कठोर श्रम के बावजूद कर्ज और शोषण के चक्र से मुक्त नहीं हो पाता। यह स्थिति केवल एक किसान की व्यक्तिगत समस्या नहीं, बल्कि पूरे कृषक समाज की सामूहिक व्यथा है। आलोचक कुमार (1990) ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि प्रेमचंद ने गरीबी को केवल करुणा का विषय नहीं बनाया, बल्कि उसे सामाजिक अन्याय और शोषण की परिणति के रूप में प्रस्तुत किया (कुमार, 1990)। इसी तरह 'निर्मला' में यह देखा जा सकता है कि निर्धनता स्त्री जीवन को किस प्रकार प्रभावित करती है—जहाँ दहेज और गरीबी मिलकर स्त्री के व्यक्तित्व और उसके संबंधों को गहराई से बाँध देते हैं। इस पर विचार करते हुए फारूकी, (2016) का मत है कि प्रेमचंद का यथार्थवाद गरीबी को केवल आर्थिक समस्या के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पीड़ा के रूप में भी सामने लाता है (फारूकी, 2016)। इस प्रकार प्रेमचंद की रचनाओं में निर्धनता का यथार्थ मानवीय त्रासदी और समाज-सुधार की चेतना दोनों को एक साथ समेटे हुए है।

5. कृषक जीवन की समस्याएँ : शोषण और बेगारी का चित्रण

प्रेमचंद के साहित्य में किसान केवल खेत जोतने वाला पात्र नहीं है, बल्कि वह भारतीय ग्रामीण समाज का सबसे बड़ा प्रतिनिधि है। उनके साहित्य में कृषक जीवन की सबसे बड़ी समस्या शोषण है, जो जमींदार, साहूकार और औपनिवेशिक प्रशासन के त्रिकोणीय दबाव से उपजी थी। 'गोदान' में होरी की जिंदगी इसका सजीव उदाहरण है, जो कर्ज और करों की मार झेलते-झेलते जीवन भर गरीबी से जूझता रहता है। प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि किसान अपने श्रम के बल पर पूरे समाज का पेट पालता है, लेकिन स्वयं भूख और अभाव से मुक्त नहीं हो पाता। सिंह **(1986)** ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि प्रेमचंद ने कृषक जीवन को केवल दीनता के प्रतीक के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय के सबसे गहरे शिकार के रूप में चित्रित किया (सिंह, 1986)। किसान को जमींदारों द्वारा बेगारी करने पर मजबूर करना, साहूकारों द्वारा सूदखोरी के जाल में फँसाना और सरकारी कर-वसूली के नाम पर उसकी कमर तोड़ देना—ये सब प्रेमचंद की रचनाओं में बार-बार उभरकर आते हैं। 'पूस की रात' में हलकू खेत की रखवाली करते हुए ठंड से मरता है, लेकिन उसके पास एक कम्बल तक नहीं होता। यह दृश्य केवल निर्धनता नहीं, बल्कि उस शोषण की परिणति है जिसने किसान को श्रम का उचित फल मिलने से वंचित कर दिया। इस संदर्भ में खानाल, (2017) का कहना है कि प्रेमचंद ने बेगारी और साहूकारी को किसान की आत्मा पर ऐसे घाव बताए हैं, जिनसे उबरना लगभग असंभव है (खानाल, 2017)।

कृषक जीवन का दूसरा बड़ा संकट बेगारी और श्रम का शोषण है। प्रेमचंद ने दिखाया कि किसान के पास अपनी मेहनत बेचने के अलावा कोई और विकल्प नहीं था, लेकिन उस श्रम का मूल्य उसे कभी नहीं मिल पाता। 'कफन' में घीसू और माधव जैसे पात्र, जो निर्धनता और शोषण के चरम उदाहरण हैं, यह बताते हैं कि गरीबी और बेगारी ने उनकी जीवन-शक्ति को ही नष्ट कर दिया है। किसान के लिए श्रम कोई सम्मानजनक कार्य नहीं रह गया था, बल्कि वह शोषण की परंपरा का अनिवार्य हिस्सा बन चुका था। इस स्थिति को तेवतिया एवं गुप्ता ने रेखांकित करते हुए कहा है कि प्रेमचंद का साहित्य किसानों की बेगारी को केवल आर्थिक समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना की जकड़न के रूप में प्रस्तुत करता है (तेवतिया एवं गुप्ता)। वहीं शर्मा (2004) का मत है कि बेगारी केवल श्रम का शोषण नहीं है, बल्कि यह किसान की आत्मा पर ऐसा बोझ है जो उसकी आने वाली पीढ़ियों को भी गुलामी के चक्र में फँसा देता है (शर्मा, 2004)। इस प्रकार प्रेमचंद के यहाँ कृषक जीवन की समस्याएँ केवल आर्थिक या सामाजिक संकट नहीं हैं, बल्कि वे मानवीय गरिमा और अस्तित्व पर गहरी चोट के रूप में सामने आती हैं। उनका चित्रण यह स्पष्ट करता है कि जब तक किसान शोषण और बेगारी के बोझ से मुक्त नहीं होगा, तब तक भारतीय ग्रामीण जीवन सच्चे अर्थों में स्वतंत्र नहीं हो सकता।

6. जमींदारी और साहूकारी प्रथा: किसानों पर आर्थिक बोझ

प्रेमचंद के साहित्य में किसानों की दयनीय स्थिति का सबसे बड़ा कारण जमींदारी और साहूकारी की प्रथा को बताया गया है। किसान अपनी मेहनत और पसीने से धरती को उपजाऊ बनाता है, लेकिन उसका अधिकांश हिस्सा जमींदार और साहूकार के हाथों में चला जाता है। 'गोदान' का होरी इसी शोषणकारी ढाँचे का प्रतीक है, जो जीवन भर मेहनत करने के बाद भी कर्ज और करों के बोझ से मुक्त नहीं हो पाता। उसकी जिंदगी की त्रासदी यह है कि वह अपने श्रम का फल खुद नहीं भोग पाता, बल्कि जमींदारों और साहूकारों के शोषण का शिकार बनता है। आलोचक बालाचन्द्रन एवं धल, (2018)का मत है कि प्रेमचंद ने जमींदारी व्यवस्था को किसान जीवन की सबसे बड़ी विडंबना के रूप में चित्रित किया है, जिसने श्रम को पराधीनता में बदल दिया (बालाचन्द्रन एवं धल, 2018)।

साहूकारी प्रथा किसानों की स्थिति को और अधिक जटिल बनाती थी। साहूकार ऊँचे ब्याज पर ऋण देते और किसान पीढ़ी-दर-पीढ़ी उस कर्ज के बोझ तले दबे रहते। 'पूस की रात' में हलकू की विवशता और 'कफन' में घीसू-माधव की हताशा इसी शोषण के चरम परिणाम हैं। प्रेमचंद ने यह दिखाया कि साहूकारी व्यवस्था ने किसानों को आत्मनिर्भर बनने से रोककर उन्हें स्थायी रूप से पराधीन बना दिया। शर्मा, (2004) लिखते हैं कि साहूकारी प्रथा ने न केवल आर्थिक शोषण किया, बल्कि किसानों की सामाजिक गरिमा को भी छीन लिया (शर्मा, 2004)। इसी विचार को आगे बढ़ाते हुए चन्द्रा, (2024) का कहना है कि प्रेमचंद ने साहूकारी को केवल आर्थिक संस्था नहीं, बल्कि शोषण की संस्कृति के रूप में देखा, जिसने किसान की स्वतंत्रता और श्रम की शक्ति को पूरी तरह बाँध दिया (चन्द्रा, 2024)। वहीं (तेवतिया एवं गुप्ता) का मानना है कि जमींदारी और साहूकारी की यह दोहरी मार किसान को केवल निर्धन नहीं बनाती, बल्कि उसकी आत्मा को तोड़कर उसे नियति का दास बना देती है (तेवतिया एवं गुप्ता)।

इस प्रकार, प्रेमचंद का साहित्य यह स्पष्ट करता है कि जमींदारी और साहूकारी प्रथा ने किसान की आर्थिक स्वतंत्रता को छीनकर उसे स्थायी रूप से गुलाम बना दिया। ये व्यवस्थाएँ केवल आर्थिक शोषण की प्रक्रिया नहीं थीं, बल्कि उन्होंने पूरे ग्रामीण समाज की संरचना को विषाक्त कर दिया था।

7. स्त्री और ग्रामीण जीवन : संघर्ष, त्याग और सहनशीलता

प्रेमचंद के साहित्य में ग्रामीण स्त्रियाँ केवल पृष्ठभूमि की पात्र नहीं हैं, बल्कि वे संघर्ष, त्याग और सहनशीलता की जीवंत प्रतीक हैं। उन्होंने स्त्री को केवल कोमलता और भावुकता के दायरे में नहीं बाँधा, बल्कि उसे जीवन की कठोर परिस्थितियों से जूझने वाली शक्ति के रूप में चित्रित किया। 'गोदान' में धनी और झुनिया जैसे पात्र यह दिखाते हैं कि स्त्रियाँ आर्थिक और सामाजिक कठिनाइयों के बीच भी परिवार की रीढ़ बनी रहती हैं। इसी तरह 'निर्मला' स्त्री जीवन के उस यथार्थ को सामने लाता है, जहाँ पितृसत्ता और दहेज जैसी सामाजिक बुराइयों ने स्त्री को गहरी पीड़ा दी। आलोचक ओबयेसकेरे (1986) का कहना है कि प्रेमचंद ने स्त्री को केवल पीड़िता के रूप में नहीं, बल्कि ग्रामीण संस्कृति की नैतिक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है, जो विपरीत परिस्थितियों में भी परिवार और समाज को बाँधे रखती है (ओबयेसकेरे, 1986)।

ग्रामीण स्त्रियों का संघर्ष केवल घरेलू क्षेत्र तक सीमित नहीं था, बल्कि वे खेत-खलिहान और मजदूरी में भी पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी रहती थीं। इसके बावजूद उन्हें सामाजिक मान्यता और सम्मान नहीं मिलता था। 'सवा सेर गेहूँ' और 'माँ' जैसी कहानियों में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि कैसे स्त्री परिवार की भूख और अभाव को पूरा करने के लिए अपने हिस्से का भोजन और सुख-स्वप्न तक त्याग देती है। इस संदर्भ में पाण्डेय (1986) का मत है कि प्रेमचंद की ग्रामीण स्त्रियाँ भारतीय नारी के आदर्श रूप को नहीं, बल्कि उसकी यथार्थ जीवन-स्थितियों को सामने लाती हैं—जहाँ त्याग और सहनशीलता मजबूरी से उपजती है, न कि केवल नैतिक गुण के रूप में (पाण्डेय, 1986) । यह त्याग उनके अस्तित्व का सबसे बड़ा आधार बन जाता है। प्रेमचंद ने यह भी दिखाया कि ग्रामीण स्त्री अपने संघर्ष के बीच भी मानवीय संवेदना और करुणा का सबसे बड़ा स्रोत बनी रहती है।

स्त्री जीवन का एक और महत्त्वपूर्ण पक्ष प्रेमचंद ने उसकी सहनशीलता के माध्यम से प्रस्तुत किया है। 'गोदान' की धनिया अपने पति होरी की पीड़ा और अन्यायपूर्ण परिस्थितियों को सहते हुए भी परिवार को टूटने नहीं देती। उसकी जिजीविषा यह दर्शाती है कि ग्रामीण समाज का असली आधार स्त्री ही है। इसी तरह 'निर्मला' यह स्पष्ट करती है कि

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को अपनी इच्छाओं और सपनों की बलि देनी पड़ती है। आलोचक कर्ण एवं हैदर लिखते हैं कि प्रेमचंद की ग्रामीण स्त्रियाँ सहनशीलता की मूर्ति हैं, लेकिन उनकी सहनशीलता को केवल आदर्शवादी रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक विवशता और आर्थिक अभाव की परिणति के रूप में समझना चाहिए (कर्ण एवं हैदर)। इसी विचार को आगे बढ़ाते हुए गुप्ता (1991) ने कहा है कि प्रेमचंद की स्त्रियाँ संघर्ष में केवल जीवित नहीं रहतीं, बल्कि वे परिस्थितियों को झेलकर भी जीवन के नए मूल्यों का निर्माण करती हैं (गुप्ता, 1991)। इस दृष्टि से देखा जाए तो प्रेमचंद का स्त्री-चित्रण ग्रामीण जीवन की वास्तविक आत्मा को सामने लाता है।

8. कहानियों और उपन्यासों में कृषक संकट : 'गोदान' का उदाहरण

प्रेमचंद ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में कृषक संकट का यथार्थवादी और गहन चित्रण किया है, जिसमें सबसे सशक्त उदाहरण 'गोदान' है। यह उपन्यास केवल एक किसान की व्यक्तिगत कथा नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय कृषक समाज की पीड़ा और शोषण का दस्तावेज है। 'गोदान' का होरी भारतीय किसान का प्रतीक है, जो मेहनत और ईमानदारी के बावजूद कर्ज और करों की चक्की में पिसता है। उसकी त्रासदी यह है कि श्रम करने के बाद भी उसके हिस्से में गरीबी, भूख और कर्ज ही आता है। आलोचक जोशी (2005) लिखते हैं कि 'गोदान' प्रेमचंद की वह कृति है जिसमें कृषक जीवन का यथार्थ किसी भी आदर्शवाद या रोमांटिकता से परे जाकर चित्रित किया गया है, और यह उपन्यास किसानों के सामूहिक दुःख का प्रतिनिधित्व करता है (जोशी, 2005)। इसी दृष्टिकोण को उपाध्याय (2011)) ने और स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्रेमचंद ने कृषक संकट को केवल आर्थिक समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय और राजनीतिक उदासीनता का परिणाम बताया है (उपाध्याय, 2011)।

कहानियों में भी कृषक संकट की झलक उतनी ही तीव्रता से मिलती है। 'पूस की रात' का हलकू ठंड से मरने की कगार पर पहुँच जाता है, क्योंकि उसके पास अपने श्रम का फल पाने के साधन नहीं हैं। इसी तरह 'सवा सेर गेहूँ' यह दर्शाती है कि भूख और गरीबी कैसे किसान को अपमान और बेइज्जती झेलने पर मजबूर करती है। इन कहानियों में प्रेमचंद ने कृषक जीवन के उन पहलुओं को उभारा है जिन्हें साहित्य में अक्सर अनदेखा किया जाता था। आलोचक का मानना है कि प्रेमचंद ने कहानियों और 'गोदान' जैसे उपन्यासों के माध्यम से कृषक जीवन के संघर्ष को केवल यथार्थवादी ढंग से ही नहीं, बल्कि सामाजिक संवेदना और करुणा के साथ भी प्रस्तुत किया है। वहीं जूक (2005) यह मानते हैं कि 'गोदान' किसानों की पीड़ा को उस स्तर तक सामने लाता है जहाँ गरीबी और शोषण केवल आर्थिक स्थिति नहीं रह जाते, बल्कि वे मानवीय अस्तित्व के लिए सबसे बड़ा संकट बन जाते हैं (जूक, 2005)।

'गोदान' के माध्यम से प्रेमचंद ने यह दिखाया कि कृषक संकट केवल ग्रामीण समाज की समस्या नहीं थी, बल्कि वह पूरे राष्ट्रीय जीवन की त्रासदी थी। होरी की मृत्यु उसके सपनों के साथ-साथ उस किसान वर्ग की असफलताओं और मजबूरियों की भी प्रतीक है, जो पीढ़ियों तक मेहनत करने के बावजूद गरीबी और कर्ज से मुक्त नहीं हो सका। प्रताप एवं सिंह (2000) ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'गोदान' भारतीय कृषक जीवन की वह सामूहिक कथा है जिसमें शोषण, बेगारी और निर्धनता का ऐसा यथार्थ चित्रण मिलता है जो किसी भी ऐतिहासिक दस्तावेज़ से कम नहीं है (प्रताप एवं सिंह, 2000)। इस प्रकार, प्रेमचंद की कहानियों और 'गोदान' जैसे उपन्यास किसानों की पीड़ा, संघर्ष और असमानताओं का ऐसा चित्रण प्रस्तुत करते हैं, जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उनके समय में था।

9. प्रेमचंद की भाषा और शैली : सहजता, सरलता और प्रभावशीलता

प्रेमचंद की भाषा और शैली का सबसे बड़ा गुण उसकी सहजता और सरलता है। उन्होंने साहित्य की भाषा को जटिल और आडंबरपूर्ण बनाने के बजाय उसे जनता की भाषा से जोड़ा। उनकी कहानियों और उपन्यासों में प्रयुक्त भाषा ऐसी है, जो सीधे आम आदमी के दिल-दिमाग तक पहुँचती है। हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं पर समान अधिकार होने के कारण उनकी भाषा में एक विशिष्ट लोक-स्वाद दिखाई देता है। 'गोदान' में किसानों की बातचीत, 'पूस की रात' में ग्रामीण बोली, और 'निर्मला' में स्त्रियों का संवाद उनकी भाषा को जीवन के बहुत करीब ला देता है। जयलक्ष्मी (2016)) का मत है कि प्रेमचंद की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें संस्कृतनिष्ठ जटिलता या फारसी-उर्दू की भारीपन नहीं है, बल्कि वह जीवन के सामान्य प्रवाह के साथ चलती है ((जयलक्ष्मी, 2016)। इसी को आगे बढ़ाते हुए चन्द्रा (1982) ने लिखा है कि उनकी भाषा केवल कथा-वर्णन का माध्यम नहीं है, बल्कि समाज के यथार्थ को पाठक की

संवेदना में उतारने का सबसे प्रभावी उपकरण है (चन्द्रा, 1982)। प्रेमचंद की शैली का यही गुण उन्हें पाठकों से गहरा जुड़ाव दिलाता है।

उनकी शैली में प्रभावशीलता का स्रोत उनकी गहन सामाजिक दृष्टि और पात्रों की मनोवैज्ञानिक पकड़ है। प्रेमचंद पात्रों को केवल नाम-मात्र की पहचान नहीं देते, बल्कि उनके जीवन की जटिलताओं, भावनाओं और संघर्षों को उनकी भाषा और संवाद के माध्यम से पाठक के सामने जीवंत कर देते हैं। उदाहरण के लिए, 'कफन' के घीसू और माधव के संवादों में करुणा और विडंबना दोनों इतनी सहजता से आती हैं कि वे सीधे पाठक के हृदय को छूते हैं। इसी पर विचार करते हुए उपाध्याय, (2011) ने लिखा है कि प्रेमचंद की शैली में नाटकीयता या कृत्रिमता नहीं है, बल्कि यथार्थ की मार्मिकता स्वयं भाषा से प्रकट होती है (उपाध्याय, 2011)। सिंह **(2020)** का मानना है कि प्रेमचंद की भाषा में जो प्रभावशीलता है, वह इस कारण है कि वे कठिन विचारों को भी इतने सहज ढंग से प्रस्तुत करते हैं कि सामान्य पाठक भी उन्हें समझ सके (सिंह, 2020)। वहीं राय एवं त्रिवेदी (1982) का कहना है कि प्रेमचंद की शैली की सबसे बड़ी शक्ति यह है कि उसमें कला और यथार्थ का ऐसा संतुलन है, जो पाठक को केवल कहानी नहीं सुनाता, बल्कि उसे समाज की सच्चाइयों से मुठभेड़ कराता है (राय एवं त्रिवेदी, 1982)। इस प्रकार प्रेमचंद की भाषा और शैली साहित्य को जीवन का आईना बना देती है, जहाँ सहजता और सरलता के साथ गहन प्रभावशीलता का समन्वय मिलता है।

10. निष्कर्ष

प्रेमचंद का साहित्य आज भी इसलिए प्रासंगिक है क्योंकि उसमें चित्रित ग्राम्य जीवन, निर्धनता और कृषक संकट केवल बीसवीं सदी की समस्याएँ नहीं थीं, बल्कि वे आज भी किसी न किसी रूप में हमारे समाज में विद्यमान हैं। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि साहित्यकार का कार्य केवल मनोरंजन या सौंदर्य की खोज नहीं, बल्कि समाज की गहरी विसंगतियों को उजागर करना और परिवर्तन की राह दिखाना है। उनकी रचनाएँ बताती हैं कि किसान भारतीय समाज की रीढ़ है, लेकिन वही सबसे अधिक शोषित और उपेक्षित भी है। जमींदारी और साहूकारी व्यवस्था, बेगारी और ऋण का बोझ, स्त्रियों की उपेक्षा और निर्धनता की त्रासदी – ये सब समस्याएँ आज भी विभिन्न रूपों में हमारे ग्रामीण जीवन को प्रभावित कर रही हैं। प्रेमचंद ने इन समस्याओं का चित्रण कर केवल करुणा नहीं उत्पन्न की, बल्कि पाठक को सामाजिक जिम्मेदारी का बोध कराया। उनके पात्र हलकू, घीसू-माधव, होरी, धनिया और निर्मला किसी एक व्यक्ति की कहानी नहीं हैं, बल्कि पूरे समाज की सामूहिक पीड़ा और संघर्ष का प्रतीक हैं। उनकी रचनाएँ यह सिखाती हैं कि गरीबी केवल आर्थिक संकट नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति की गरिमा, आत्मसम्मान और अस्तित्व को भी गहराई से प्रभावित करती है। इसी तरह ग्रामीण स्त्रियाँ केवल घर की सीमाओं में बँधी नहीं हैं, बल्कि वे संघर्ष और त्याग के माध्यम से पूरे समाज को सहारा देती हैं। प्रेमचंद की भाषा और शैली इस संदेश को व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचाने में सक्षम बनाती है, क्योंकि उसमें कृत्रिमता नहीं बल्कि सहजता और लोकजीवन का स्वाद है। गोदान विशेष रूप से इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि वह कृषक जीवन की त्रासदी को न केवल व्यक्तिगत स्तर पर बल्कि सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर भी सामने लाता है। होरी की मौत केवल एक किसान की मृत्यु नहीं है, बल्कि उस पूरे वर्ग की असफलताओं और विवशताओं का प्रतीक है जो पीढ़ियों से मेहनत करने के बावजूद गरीबी और शोषण से मुक्त नहीं हो सका। इस प्रकार, प्रेमचंद का यथार्थवाद हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि जब तक समाज की आर्थिक और सामाजिक असमानताएँ समाप्त नहीं होंगी, तब तक सच्चा विकास संभव नहीं है। समकालीन संदर्भ में प्रेमचंद का साहित्य हमें यह प्रेरणा देता है कि हमें सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय गरिमा की रक्षा के लिए निरंतर संघर्ष करना होगा। यही प्रेमचंद के साहित्य की सबसे बड़ी उपलब्धि और प्रासंगिकता है, जिसने साहित्य को समाज का आईना ही नहीं बल्कि परिवर्तन का औजार बना दिया।

संदभा सूची

1. राय, ए., एवं त्रिवेदी, एच. (1982). प्रेमचंद: एक जीवन. पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस।
2. जयरलक्ष्मी, के. (2016). सामाजिक सुधारक प्रेमचंद – एक समीक्षा. जर्नल ऑफ लिटरेचर, लैंग्वेजेज एंड लिंग्विस्टिक्स, 20, 44-46।
3. सिंह, एस. के. (2020). औपनिवेशिक उत्तर भारत में स्त्रीत्व के बदलते चित्रण: अनुरूपता और प्रतिरोध के बीच प्रेमचंद. कंट्रीब्यूशन्स टू इंडियन सोशियोलॉजी, 54(3), 414-439।
4. अंसारी, ए. के., एवं नागपाल, आर. (संपा.). (2023). प्रेमचंद ऑन लिटरेचर एंड लाइफ: सेलेक्शंस (हिन्दी से अनुवादित). टेलर एंड फ्रांसिस।
5. दावर, जे. एल. (1996). प्रेमचंद के कार्यों में लोकप्रिय संस्कृति का प्रतिनिधित्व. सोशल साइंटिस्ट, 109-129।
6. श्रीवास्तव, डी. आर., एवं प्रेमचंद, म. (1936). प्रारम्भिक जीवन. चिल्ड्रन, 1000(1906)।
7. प्रेमचंद, बी. (2024). जीवन और समय. दि ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ मॉडर्न इंडियन लिटरेचर्स, 162।
8. चन्द्रा, एस. (1982). प्रेमचंद और भारतीय राष्ट्रवाद. मॉडर्न एशियन स्टडीज, 16(4), 601-621।
9. कर्ण, यू. के., एवं हेदर, एस. आर. हाशिए पर पड़े वर्गों का संघर्ष: प्रेमचंद की कहानियों में मानवीय गरिमा का अध्ययन।
10. शर्मा, एम. (2004). ग्रामीण वित्तीय संस्थान: परिवर्तन की चुनौती. रूरल डेवलपमेंट इन इंडिया, 2, 11।
11. फारूकी, बी. (2016). तीन कहानियों के अनुवाद के माध्यम से प्रेमचंद का अनुभव: संस्कृति, जेंडर, इतिहास. प्रेमचंद इन वर्ल्ड लैंग्वेजेज (पृ. 175-192). रूटलेज इंडिया।
12. सिंह, के. पी. (1986, जनवरी). किसान आंदोलन और प्रेमचंद. प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस (खंड 47, पृ. 664-670). इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस।
13. खनाल, एल. (2017). प्रेमचंद के 'निर्मला' में श्रमिक वर्ग का प्रतिनिधित्व (डॉक्टोरल शोधप्रबंध, डिपार्टमेंट ऑफ इंग्लिश)।
14. तेवतिया, बी., एवं गुप्ता, जी. मुंशी प्रेमचंद की दृष्टि में भारतीय किसान का चित्रण।
15. बालाचन्द्रन, आर. पी., एवं धल, एस. सी. (2018). साहूकार और किसानों के बीच संबंध: सैद्धांतिक दृष्टिकोण और पश्चिम बंगाल के आलू किसानों से साक्ष्य. एग्रीकल्चरल फाइनेंस रिव्यू, 78(3), 330-347।
16. चन्द्रा, पी. (2024). वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कृषि सुधारों की समस्याएँ और चुनौतियाँ: डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर की विचारधारा के संदर्भ में. सोशल लेंस, 1(2)।
17. ओबयसेकेरे, आर. (1986). प्रेमचंद के 'गोदान' में स्त्रियों के अधिकार और भूमिकाएँ. जर्नल ऑफ साउथ एशियन लिटरेचर, 21(2), 57-64।
18. पांडेय, जी. (1986). क्या बराबरी?: प्रेमचंद के लेखन में स्त्रियाँ. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 2183-2187।
19. गुप्ता, सी. (1991). प्रेमचंद की कहानियों में स्त्रियों का चित्रण: एक समीक्षा. सोशल साइंटिस्ट, 88-113।
20. वनश्री. (2015). साहित्यिक आख्यानों में संघर्षरत किसान वर्ग. इंडियन लिटरेचर, 59(4 (288)), 182-200।
21. जोशी, पी. सी. (2005). भारतीय साहित्य में उपेक्षित वर्ग: प्रेमचंद और उनके 'गोदान' पर कुछ विचार. इंडियन लिटरेचर, 49(2 (226)), 101-118।
22. उपाध्याय, एस. बी. (2011). औपनिवेशिक उत्तर भारत में प्रेमचंद और कृषक वर्ग की नैतिक अर्थव्यवस्था. मॉडर्न एशियन स्टडीज, 45(5), 1227-1259।
23. ज़ूक, डी. सी. (2005). दैनिक जीवन का आक्रोश: मोहभंग, निराशा और प्रेमचंद के 'गोदान' में न्याय की अंतहीन खोज. साउथ एशिया: जर्नल ऑफ साउथ एशियन स्टडीज, 28(3), 413-435।
24. प्रताप, एम., एवं सिंह, एस. बी. (2000, जनवरी). प्रेमचंद के उपन्यासों में किसान की समस्या, चेतना और संघर्ष. प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस (पृ. 922-929). इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस।